R.N.I. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2015-17

मूल्य-4 रुपये, वर्ष-17, अङ्क-2 फरवरी 2018 1

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ (उ०प्र०) का
मासिक मुख समाचार पत्र

मङ्गलायतन

2

मङ्गलायतन विश्वविद्यालय में

नियतिवाद विषय पर आयोजित सेमिनार की झलकियाँ

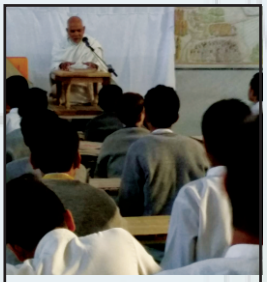

ब्रह्मचारी रवीन्द्रजी 'आत्मन' मङ्गलार्थी बच्चों को उद्बोधन देते।

मङ्गलायतन

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ (उ.प्र.) का

मासिक मुखपत्र

वर्ष-18, अङ्क-2 (वी.नि.सं. 2544) फरवरी 2018

गतांक से आगे...

प्रशममूर्ति बहिनश्री के वचनामृतों का भावानुवाद

मैं अबद्ध हूँ, मैं ज्ञायक हूँ, यह विकल्प दुःखरूप लगे।
तब अपूर्व पुरुषार्थ जगता, अन्तर में आनन्द आवे ॥37॥

जो मुमुक्षु आत्मा के पाने का, दृढ़ निश्चय कर लेता।
गुरु के वचनों का मंथन करके, मारग को पा लेता ॥38॥

विकल्प करके सहज दशा को, नहीं बनाये रखते हैं।
यदि विकल्प करना पड़ता है, सहज दशा नहीं कहते हैं॥
सहज दशा की थिरता का, अन्य कोई पुरुषार्थ नहीं॥
आगे बढ़ने के पौरुष से, सहज दशा कायम रहती ॥39॥

जैसे राही, एक नगर से, नगर दूसरे जाता है।
मध्य आये जो, अन्य नगर, वो उन्हें छोड़ता जाता है॥
वैसे साधक को शुभभाव, भले बीच में आते हैं।
नहीं चूकता, लक्ष्य कभी भी, उन्हें छोड़ता जाता है ॥40॥

गर सच्ची उत्कण्ठा हो तो, मार्ग सहज मिल जाता है।
जितनाक ारणद ेंगेउ तना,क ार्यी नयमस ेह ोताह ै ॥41॥

सच्ची रुचि से शुभभवों में उपशम धारा बहती है।
बिना रुचि के शुभ भावों में चंचलता ही रहती है॥42॥

भावानुवाद—संजयकुमार जैन

संस्थापक सम्पादक
स्व. पण्डित कैलाशचन्द्र जैन, अलीगढ़

मुख्य सलाहकार
श्री बिजेन्द्रकुमार जैन, अलीगढ़

सम्पादक
पण्डित संजय जैन शास्त्री, मङ्गलायतन

सम्पादक मण्डल
ब्रह्मचारी पण्डित ब्रजलाल शाह, वढ़वाण
बाल ब्रह्मचारी हेमन्तभाई गाँधी, सोनगढ़
डॉ. राकेश जैन शास्त्री, नागपुर
श्रीमती बीना जैन, देहरादून

सम्पादकीय सलाहकार
पण्डित रतनचन्द भारिल्ल, जयपुर
पण्डित विमलदादा झाँझरी, उज्जैन
श्री चिरंजीलाल जैन, भावनगर
श्री प्रवीणचन्द्र पी. वोरा, देवलाली
श्री वसन्तभाई एम. दोशी, मुम्बई
श्री श्रेयस् पी. राजा, नैरोबी
श्री विजेन वी. शाह, लन्दन
पण्डित सुधीर जैन शास्त्री, मङ्गलायतन

मार्गदर्शन
डॉ. किरीटभाई गोसलिया, अमेरिका
पण्डित अशोक लुहाड़िया, अलीगढ़

अङ्क के प्रकाशन में सहयोग
श्रीमती मंगलाबेन
नानालाल पारेख
ए-7, विवेकानन्द पार्क-3, डॉ. अम्बेडकर रोड, नेहरू मेमोरियल हॉल के सामने,
पूना - 411001 (महा.)

क्या - कहाँ

समाधिमरण पाठ..... 05
नाटक सुनत हिये..... 08
बालकों की कलम से..... 11
भगवान आत्मा निजशक्ति..... 15
भगवान श्री धरसेनाचार्य..... 23
उपदेश सिद्धान्त रत्नमाला..... 27
पुरुषार्थमूर्ति श्री निहालभाई..... 30
सुगुरु..... 32
समाचार-दर्शन..... 33

शुल्क :
वार्षिक : 50.00 रुपये
एक प्रति : 04.00 रुपये

समाधिमरण पाठ

— कवि श्री शिवलालजी

परम पंच परमेष्ठी का ध्यान धर,
परमब्रह्म का रूप आया न जर।
परमब्रह्म की मुझको आई परख,
हुआ उर में संन्यास का जब हरष॥1॥

लगन आत्मा राम सों लग गई,
मेरी मोह निद्रा सभी भग गई।
लगी दृष्टि चेतन चिद्रूप पर,
टिकी ब्रह्म के ज्ञान के रूप पर॥2॥

परमब्रह्म की अब रटारट मेरे,
निजानन्द रस की गटागट मेरे।
यहाँ आज रोने का क्या शोर है,
मेरे हर्ष आनन्द का जोर है॥3॥

निरंजन की कथनी सुनाओ मुझे,
नहीं और बतियाँ बताओ मुझे।
न रोओ मेरे पास इस वक्त में,
मैं तिष्ठा हूँ खुशहाल खुश वक्त में॥4॥

जरा रोने-धोने को अब बस करो,
नजर मेहरबानी की मुझ पर धरो।
उठो अब मेरे पास से सब कुटुम्ब,
तजो मोह मिथ्यात का भय विडम्ब[1]॥5॥

जरा आत्मा भाव उर आने दो,
परम ब्रह्म की लय मुझे ध्याने दो।

1. विडम्बना

मुझे ब्रह्मचर्चा से वर्ते हुलाश,
करो और चर्चा न कुछ मेरे पास॥6॥
जो भावे तुम्हें सो न भावे मुझे,
न झगड़ा जगत का सुहावे मुझे।
ये काया पे पुटकी पड़ी मौत की,
याद आई है शिवलोक के नाथ की॥7॥
यह देह चिरकाल से है मुई,
मेरी जिन्दगानी से जिन्दा भई।
तजा भेदविज्ञान से यह मुर्दा आज,
चलो मित्र चलकर करें मुक्तिराज॥8॥
जिसम झोपड़ी को लगी आग जब,
हुई मेरे वैराग्य की जाग तब।
संभाले ये अपने रतन मैंने तीन,
लिया अपने आपको मैं आप चीन्ह॥9॥
जिसे मौत है उसको मुझको है क्या?
मुझे तो नहीं फिर भय मुझको क्या?
मेरा नाम तो जीव है जीव हूँ,
चिरंजीव चिरकाल चिरंजीव हूँ॥10॥
अखंडित अमंडित अरूपी अलख,
अदेही अगेही अनेही निरख।
परमब्रह्मचर्य परम शान्तितम,
निरालोक लोकेश लोकोत्तम॥11॥
परमज्योति परमेश परमात्मा,
परमशुद्ध परमसिद्ध शुद्धात्मा।
चिदानन्द चैतन्य चिद्रूप हूँ,
निरंजन निराकार शिवभूप हूँ॥12॥

ये देह तज कर चले आज हम,
चिता में धरो इसको ले जाके तुम।
कहीं जाओ यह देह क्या इससे काम,
तजी इससे रगवत[1] मोहब्बत तमाम॥13॥

मुवे संग रहकर बहुत कुछ मुये,
मगर आज निरगुण निरंजन भये।
मिली आज संन्यास की यह घड़ी,
मेरे हाथ आई ये अद्‌भुत जड़ी॥14॥

विषयविष से निर्विष हुआ आज मैं,
चलाचल से निश्चल हुआ आज मैं।
परम भाव अमृत पिया आज मैं,
नर भव का लाहा[2] लिया आज मैं॥15॥

घटा आत्म उपयोग की आई झूम,
अजब तुर्फ तुरियाँ बनी रंगभूमि[3]।
शुक्लध्यान टाली की टंकोर है,
निजानन्द झांझन की झंकोर है॥16॥

अजर हूँ अमर हूँ न मरता कभी,
चिदानन्द शाश्वत् न डरता कभी।
कि संसार के जीव मरते डरें,
परम पद का 'शिवलाल' वन्दन करें॥17॥

1. लगाव, 2. फल, 3. विचित्र समस्याएँ भी रंगभूमि बन गईं।

आरंभ्यौ पूरन करै, कह्या बचन निरबाह।
धीर सजल सुंदर रमैं, येते गुन नर माँह॥

अर्थात् जो आरंभ किए हुए कार्य को पूर्ण करते हैं, कहे वचन का निर्वाह करते हैं; वे मनुष्य धैर्य, लज्जा-शील या प्रतिष्ठा, सुंदरता आदि गुणों में रमण करते हैं।

भाव यह है कि सद्‌गुणी बनने के लिए कुछ पात्रता आवश्यक होती है; उसे हमें विकसित करना चाहिए। **[बुधजन-सतसई, काव्य ११९]**

'नाटक सुनत हिये फाटक खुलत हैं'

'समयसार-नाटक' द्वारा शुद्धात्मा का श्रवण करने से हृदय के फाटक खुल जाते हैं

[समयसार-नाटक पर हुए पूज्य गुरुदेव के प्रवचनों के अंश]

❀ शास्त्रकार कहते हैं कि अहो, भगवान अरिहन्तदेव ने दिव्य वाणी से शुद्धात्मा बताया। आत्मा का शुद्धस्वरूप जिनके प्रसाद से प्राप्त हुआ, उन भगवन्त के प्रति हमारे हृदय में परम भक्ति बहती है। इस भक्ति के कारण हमारे सुबुद्धि प्रगटी है और कुबुद्धि दूर हो गई है; अर्थात् भगवान ने आत्मा का जैसा शुद्धस्वरूप बताया उसके अनुभव से सम्यग्ज्ञानरूप सुबुद्धि प्रगटी है। देखो, यह आत्मा का ज्ञान होता है, वही सच्ची सुबुद्धि है, इसके बिना सारी पढ़ाई कुबुद्धि है, आत्महित के लिए वह काम नहीं आती।

❀ जिसने अरिहन्तदेव को पहचाना, और मेरा आत्मा भी ऐसा ही है, ऐसा जाना; उसके अपने सर्वज्ञस्वभावी आत्मा के साथ एकता होने पर राग केस ाथक ीए कताछ ूटज ातीह ैअ ैरस् वानुभवम ेंउ सकेश् ाद्धा-ज्ञानलोचन स्थिर हो जाते हैं। वह सर्वज्ञ के मार्ग के परम आदरपूर्वक उसके अनुभव की पिपासा से स्थिरचित्त होकर उसका प्रयत्न करता है।

❀ फिर, भगवान की भक्ति से ओतप्रोत हमारा चित्त कभी आरतीरूप होकर अर्थात् अत्यन्त प्रीतिरूप होकर प्रभु के सन्मुख बलि-बलि जाता है; अन्तर में अपने चैतन्यप्रभु के सन्मुख आता है, और बाहर में सर्वज्ञ परमात्मा के सन्मुख होकर उनकी भक्ति करता है—ऐसी भक्तिपूर्वक और अध्यात्मरस के घोलनपूर्वक यह समयसार नाटक-ग्रन्थ रचा जा रहा है। उसका भावपूर्वक श्रवण करने पर क्या होता है ? तो कहते हैं कि हृदय के फाटक खुल जाते हैं और ज्ञान-निधान प्राप्त होता है।

❀ अहो, यह 'समयसार' तो मोक्ष में जाने के लिए शकुन है। जिसे यह

समयसार मिला उसे मोक्ष का उत्तम शकुन हुआ। अहो! तीर्थंकर केवलीप्रभु के पास से सीधी आई हुई वाणी इस समयसार में है। जिसको ऐसा समयसार सुनने को मिला, उसके तो मोक्ष में जाने का शकुन हो गया - इसका भाव समझनेवाला आनन्दपूर्वक मोक्ष में जावेगा। यह समयसार शास्त्र और अन्दर उसके वाच्यरूप शुद्धात्मा, वह मोक्ष में जाने की सीढ़ी हैं; जिसको ऐसा समयसार का श्रवण मिला और उसके भावों की रुचि हुई, उसके हाथ में मोक्ष में जाने की सीढ़ी आ गई, उसको मोक्ष में जाने का शकुन हो गया। अब वह जीव कर्म का वमन करके मोक्ष में गमन करता है। रागादि भावकर्मों को छोड़कर वह आत्मा के स्वभाव को साधता है।

❀ प्रमोदपूर्वक गुरुदेव कहते हैं कि—अहो! आनन्दरस का घूँट इस समयसार में भरा है; उसके रस में ज्ञानीजन लीन होते हैं—समयसार में बताये हुए अध्यात्मरस में ज्ञानी ऐसे लीन होते हैं कि जैसे पानी में नमक घुल जाता है, वैसे ही उनकी परिणति अन्तर्मुख होकर शुद्ध चैतन्यस्वभाव में घुल जाती है, लीन हो जाती है।

❀ समयसार समझते ही मोक्ष का सरलमार्ग हाथ में आ गया। जैसा अपना शुद्ध आत्मा है, वैसा देखा, उसके आनन्द में रमते-रमते वह मोक्ष को सुगमता से साधता है। सम्यग्दर्शनादि गुणों का तो यह पिण्ड है—इसके अभ्यास से सम्यग्दर्शनादि गुणों का समूह प्रगट होता है। मुमुक्षुओं को अन्तर के भाव से शुद्ध आत्मा के लक्ष्यपूर्वक, इस समयसार के अभ्यास का फल उत्तम सुख की प्राप्ति है, ऐसा कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने स्वयं अन्तिम गाथा में बताया है।

* * *

अब तो समयसार के प्रचार का युग है। मुमुक्षु जीवों में घर-घर समयसार का अभ्यास हो रहा है (किसके प्रताप से? गुरु कहान के प्रताप से।)

* * *

❀ जो इस समयसार के 'पक्षी' हैं–अर्थात् समयसाररूपी पंख जिनको मिले हैं, वे पक्षी ज्ञानगगन में उड़ते हैं। समयसार में जैसा शुद्धात्मा कहा, वैसा लक्ष्य में लेकर उसका जिसने पक्ष किया, वह समयसार का पक्षी, समयसाररूपी पंखवाला पक्षी, ज्ञानरूपी आकाश में निरालम्बी होकर विहार करता है; अर्थात् विकल्प का पक्ष छोड़कर ज्ञानस्वभाव का अनुभव करता है। समयसार का पक्ष अर्थात् शुद्धात्मा का पक्ष। उसका विरोध करनेवाले समयसार के विपक्षी जीव तो जगत के जाल में भटकते हैं। शुद्धात्मारूपी समयसार का पक्ष करनेवाले जीव शुद्धनयरूपी पंख से ज्ञानजगत में उड़ते हैं अर्थात् निरालम्बीरूप से आकाश जैसे अपार ज्ञानस्वभाव का अनुभव करते हैं।

❀ यह समयसार तो शुद्ध सोने जैसा निर्मल है। सोने से इसके अक्षर लिखवाए जावें तो भी महिमा पूरी न हो। सौटंच के सोने जैसे शुद्धभाव इस समयसार में भरे हैं। समयसार आत्मा के गम्भीर भावों से परिपूर्ण विराटस्वरूप है। ऐसे समयसार का श्रवण करते ही; अर्थात् उसके वाच्यरूप शुद्धात्मा के लक्ष्य से भाव–श्रवण करने पर भव्य जीवों के हृदय के फाटक खुल जाते हैं, सम्यग्दर्शनादि अपूर्व भाव प्रगट होते हैं।

❀ यह समयसार—जो भगवान की वाणी है, उसके भावों की परीक्षा करके निर्णय करे तो आत्मा की स्वानुभूति हो जाए; उसके फिर यह शंका न रहे कि मेरे अभी अनन्त भव होंगे। वह तो नि:शंक हो जाए कि – अहो! समयसार ने तो निहाल कर दिया। मैं संसार से छूटकर मोक्षमार्ग में आ गया, समयसार ने तो अशरीरी चैतन्यभाव बताया। ऐसा समयसार सुनकर जिसने आत्मा की प्रतीति की, उसके लिए मोक्ष का फाटक खुल गया; चैतन्य का कपाट खुल गया। (क्रमश:)

[आत्मधर्म हिन्दी, अंक-2, वर्ष-जून, 1971]

बालकों की कलम से....

जैन विद्यार्थी गृह सोनगढ़ के विद्यार्थियों के लिए सम्पादक द्वारा नियोजित 'व्याख्यान-लेखन-स्पर्द्धा' में सभी विद्यार्थियों ने उमंग से भाग लिया था और इसप्रकार अध्यात्म-लेखन के संस्कार जागृत हुए थे।

- जो जानता है, वह आत्मा है; शरीर जड़ है; शरीर और आत्मा की भिन्नता का भान, वह भेदज्ञान है। ऐसे भेदज्ञान से आत्मलाभ होता है। और शरीर तथा आत्मा को एक मानना, वह अभेदबुद्धिरूप मिथ्याज्ञान है और उससे संसार होता है।
- पर से भेद और स्व से अभेद ऐसा सम्यग्ज्ञान है।
- जो जानता है, वह जीव है; जीव ज्ञानानन्दस्वरूप है, वह अतीन्द्रिय आनन्दमय है। शरीर अचेतन, जड़, नाशवान है। वह कुछ जानता नहीं है। लक्षणभेद द्वारा स्व और पर को (चेतन और अचेतन को) भिन्न जानना चाहिए; तभी धर्म होगा।
- अज्ञानी शरीर में अहंबुद्धि करता है।
- भगवान आत्मा चेतन है, उसमें राग नहीं है। चेतन को चेतन और अचेतन को अचेतन जानकर, अपने चेतनस्वभाव का अनुभव करना, वह प्रज्ञा है और वह मोक्ष का कारण है।
- जैसे हंस दूध और पानी को भिन्न कर देता है, उसी प्रकार मोक्ष की साधना के लिए विवेक द्वारा जीव और अजीव को भिन्न जानना चाहिए।
- पुद्गलादि परद्रव्य में अहंबुद्धि छोड़कर, राग-द्वेष दूर करके आत्मस्वभाव में लीन होना चाहिए।
- भगवान आत्मा स्वयं अतीन्द्रिय आनन्द का समुद्र है; उसमें से राग-द्वेष दूर करके आत्मस्वरूप में लीन होते ही आनन्द प्राप्त होता है। अपना आनन्द अपने में है; शरीर में से या बाहर से आनन्द नहीं आता।

- अज्ञानी जीव कहता है कि शरीर और आत्मा एक ही है, मैं ही उसका कर्ता हूँ; इस प्रकार जड़ का कर्ता चेतन को मानता है।
- मैं ज्ञानस्वरूप हूँ, ऐसा अज्ञानी नहीं जानता, और शुभ-अशुभराग मेरा कार्य है, उसका मैं कर्ता हूँ, ऐसा वह मानता है। ऐसी अज्ञानबुद्धि से ही कर्म-बन्धन होता है।
- जब स्वरूप का भेदज्ञान करे, तब जीव को सम्यग्ज्ञान होता है; तब वह जानता है कि मैं ज्ञान हूँ और राग मेरा स्वरूप नहीं है; अर्थात् वह राग का कर्ता नहीं होता, उसे कर्म नहीं बँधते; इसका नाम धर्म है।
- जड़ कर्म और ज्ञान जुदा है, कर्म ने आत्मा के ज्ञान को ढक नहीं दिया है। जीव सच्चा पुरुषार्थ करे तो सच्चा ज्ञान प्रगटे और जब सच्चा ज्ञान प्रगट हो, तब कर्म टल जाते हैं। ज्ञान और कर्म जुदा है—ऐसा धर्मी जानता है।
- राग-द्वेष-हर्ष-शोक का वेदन तो अज्ञानी का वेदन है। ज्ञानी तो अपने ज्ञानस्वरूप तथा आनन्द का ही वेदन करता है। जड़ को तो कोई वेदन होता नहीं। आनन्द का वेदन, वही ज्ञानी का वेदन है।
- प्रत्येक जीव को ऐसा भेदज्ञान करके साधकदशा प्राप्त करनी चाहिए।
- शरीर जड़ है; दु:ख और राग-द्वेष भी जीव का वास्तविक स्वरूप नहीं है; जीव तो ज्ञानस्वरूप है। जानने में दु:ख नहीं होता। ज्ञानस्वरूप में तो आनन्द है।
- शरीर में बिच्छू ने काटा, उसका जीव को ज्ञान हुआ, वह कहीं दु:ख का कारण नहीं है; परन्तु शरीर मेरा और बिच्छू ने मुझे काटा—ऐसी मिथ्याबुद्धि ही महा दु:ख का कारण होती है। बिच्छू ने काटा और दु:ख हुआ, इन दोनों से धर्मी अपने ज्ञानस्वरूप को भिन्न जानता है। ऐसा जो जाननेरूप भाव, वही सच्चा आत्मा है। दु:ख, वह वास्तव में आत्मा नहीं है।
- प्रभु! ऐसे आत्मा का तू अनुभव कर! आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द की सुगन्ध भरी है, शरीर मेरा, मैं उसका कर्ता—इस प्रकार अज्ञान और

राग की गन्ध अनादि से बैठी है, वह निकाल दे, और अन्तर में देह से भिन्न, राग से भिन्न आत्मा के आनन्द की सुगन्ध ले।

- चेतनस्वरूप भगवान आत्मा है, वह शरीर और राग का अकर्ता है। जहाँ तक राग और ज्ञान को एक अनुभव करता है, वहाँ तक जीव को धर्म नहीं होता।
- राग में रुका हुआ वीर्य तो अज्ञान है, राग से भिन्न आत्मा का ज्ञान करने में अनन्त वीर्य है।
- राग और पुण्य-पाप, वह तो मैला है, भगवान आत्मा पवित्र है।
- छहों द्रव्य के गुण-पर्याय अपने अपने में हैं। जीव-अजीव के गुण-पर्याय भिन्न-भिन्न हैं। कोई एक-दूसरे को करता नहीं है; ऐसा सर्वज्ञ भगवान के आगम में कहा है।
- राग, वह ज्ञान का कार्य नहीं है।
- पर से भिन्न अपने स्वरूप का विचार करना।
- राग तो अन्धकार है, उसमें से ज्ञानप्रकाश नहीं आता। ज्ञानसूर्य में रागरूपी अन्धकार नहीं है। ज्ञानप्रकाश का अनुभव हो, वहाँ राग का अन्धकार दूर हो जाता है।
- ज्ञान में राग नहीं है, राग में ज्ञान नहीं है।
- मिथ्यात्व महान पाप है। चेतन-अचेतन को भिन्न जानना सम्यग्ज्ञान है। शरीर और आत्मा को एक मानना अज्ञान है। अज्ञान महान पाप है।
- शरीर का हिलना, चलना, बोलना, वह जड़ की क्रिया है; वह आत्मा की क्रिया नहीं है। आत्मा की क्रिया तो ज्ञान है।
- सूर्य का प्रकाश होने पर अन्धकार का नाश होता है, उसी प्रकार सम्यग्ज्ञान सूर्य के उगने पर मिथ्यात्व और राग का नाश हो जाता है।
- शरीर को अपना माननेवाला जीव, आत्मा का साधन नहीं कर सकता। देह से भिन्न आत्मा को जाननेवाला जीव, आत्मा का साधक होकर सिद्धपद को पाता है।

- शरीर से भिन्न चैतन्य को जाने, वह शरीर रहित पद को पाता है।
- एक आत्मा वह अपना काम करे और जड़ का भी काम करे, ऐसे दो कार्यों को नहीं करता। आत्मा अपने ज्ञान का कार्य करे किंतु जड़ का कार्य नहीं करता; इस प्रकार भिन्नता है।
- आत्मा जड़ से भिन्न अखण्ड आनन्दस्वरूप है। उसका ज्ञान करने पर साधकदशा आती है। व्यवहार के आश्रय से या राग से साधकपना नहीं आता।
- यह तो भगवान का मार्ग है। इसमें कायर का काम नहीं है। राग का आलम्बन लेना चाहे, वह तो कायर है, वह मोक्ष को नहीं साध सकता। यह तो रागरहित वीतराग का मार्ग है।
- चैतन्य-हंस को, पुण्य-पापरूपी कंकड़ों की खुराक नहीं होती, वह तो भेदज्ञानरूपी चोंच से सच्चे मोतियों का चारा चुगनेवाला है। अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड आत्मा है, उसमें विकार का वेदन नहीं है। विकार के वेदन से सिद्ध नहीं होते। विकार से भिन्न स्वभाव को भेदज्ञान से जानकर, ज्ञानस्वभाव के वेदन से सिद्धपद प्राप्त होता है।
- ज्ञान में से विकार का कर्तृत्व छोड़े, तभी सम्यग्ज्ञान और मोक्षमार्ग होता है। वह जीव ज्ञान का कर्ता और विकार का अकर्ता होकर मोक्ष को साधता है।
- राग के कारण से जीव को शुद्धता नहीं होती। राग का-व्यवहार का आश्रय छोड़े और स्वभाव का आश्रय करे, तभी शुद्धता होती है।
- जो चीज़ अपने में नहीं है और हम स्वयं जिसमें नहीं हैं, उसका कार्य अपना मानने पर जीव अपने आत्मा का सच्चा कार्य (भेदज्ञान) नहीं कर सकता, स्व-पर को बराबर भिन्न जाने, तभी आत्मा के अनुभव से जीव को भेदज्ञान होता है और तभी धर्म होता है।

[आत्मधर्म हिन्दी, अंक-2, वर्ष-जून, 1971]

भगवान आत्मा निजशक्ति से उल्लसित होता है

राजकोट में वीर संवत् 2497 वैशाख शुक्ला पंचमी से ज्येष्ठ कृष्णा तीज तक समयसार की 47 शक्तियों पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचनों से

* सर्वज्ञ भगवान कहते हैं कि भाई! तू आत्मा है, तुझमें सर्वज्ञस्वभाव आदि अनन्त शक्तियाँ विद्यमान हैं; उन शक्तियों का वर्णन इस समयसार में किया है। अनुभव में, कलम डुबो-डुबोकर इस समयसार की रचना हुई है।
* अनन्त शक्तियाँ आत्मा में एकसाथ हैं, उस शक्तिमान आत्मद्रव्य को पहिचानकर अनुभव में लेने से अनन्त शक्तियों का स्वाद एकसाथ आता है; अनन्त शक्तियाँ एकसाथ निर्मलरूप से परिणमित होती हैं— उल्लसित होती हैं।
* अपनी अनन्त शक्तियों को नहीं जाना और अपने को रागादि जितना माना, इसलिए पर्याय में जीव की शक्ति मुँद गई है और वह दुःखी होकर संसार में भटकता है। इस प्रकार निजशक्ति का अज्ञान, वह अधर्म है।
* अपने स्वभाव की शक्ति का भान होने पर रागादि में से आत्मबुद्धि उड़ जाये और स्वभाव के अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद अनुभव में आए, वह धर्म है, तथा वह मोक्षमार्ग है।
* यहाँ आचार्यदेव कहते हैं कि - हे जीव! तेरा स्वरूप ज्ञान है, अकेला ज्ञान नहीं परन्तु ज्ञान के साथ अनन्त गुणों का परिणमन भी है। तू ही सर्वशक्तिमान परमेश्वर है।
* प्रत्येक द्रव्य में अनन्त शक्तियाँ हैं; जड़ में भी अनन्त शक्तियाँ हैं; परन्तु यहाँ ज्ञानस्वरूप आत्मा की शक्तियों का वर्णन है; क्योंकि आत्मा के स्वभाव को पहिचानने का प्रयोजन है।

* प्रथम जीवत्वशक्ति कहकर आत्मा का जीवन बतलाते हैं। आत्मा का जीवन किससे टिकता है ?—तो कहते हैं कि चैतन्यमय भावप्राणरूप जीवत्व शक्ति से आत्मा सदा जीता है, जीवरूप से टिकता है।
* तेरा जीवन इन शरीर-मन-इन्द्रियों या आयु द्वारा नहीं है; आयु तो शरीर के संयोग की स्थिति का कारण है, उसके द्वारा कहीं जीव टिकता नहीं है, जीव तो अपने चैतन्य जीवन द्वारा जीता है। आयु जीव की नहीं है, आयु पूर्ण होने पर जीव मर नहीं जाता, वह तो चैतन्यप्राण द्वारा जीवित ही है।
* अरिहन्त भगवान और सिद्ध भगवान ऐसा चैतन्य जीवन जीते हैं, वही सच्चा जीवन है।
* नेमिनाथ भगवान की भाँति अपना आत्मा भी चैतन्य जीवन जीनेवाला है। अपने जीवन के लिए अपने अस्तित्व के लिए अन्य किसी की आवश्यकता नहीं होती।
* जीव को जीवत्व का कारण अपने चैतन्यमात्र-भावप्राण हैं, और उन भावप्राणों को धारण करने का कारण जीवत्वशक्ति है। आत्मा अपनी जीवत्वशक्ति से चैतन्यमात्र भावप्राण को धारण करके सदा जीवित है। आत्मा स्वयं 'जीवन्तस्वामी' है।
* सीमन्धर परमात्मा को विदेहक्षेत्र के जीवन्तस्वामी कहा गया है; जीवन्त अर्थात् विद्यमान। उसी प्रकार जीवनशक्ति का स्वामी ऐसा जीवन्तस्वामी आत्मा, अपने चैतन्यप्राण द्वारा सदा विद्यमान है।
* जिस प्रकार जल से भरे हुए सरोवर को छोड़कर, हिरन मरीचिका के पीछे दौड़-दौड़कर हाँफ जाए, तथापि उसे पानी नहीं मिलता, कहाँ से मिले ? वहाँ पानी है ही कहाँ ? उसी प्रकार अनन्त शक्ति के जल से भरपूर निर्मल चैतन्य सरोवर—जो स्वयं है, उसे भूलकर जीव मरीचिका जैसे राग में दौड़ता है और दुःखी होता है; सुख की बूँद भी

उसे नहीं मिलती; कहाँ से मिले ? राग में सुख है ही कहाँ ? भाई ! सुख का सरोवर तो तुझमें छलाछल भरा है, उसमें देख तो अपने आत्म-सरोवर में से तुझे सुख का अमृत मिलेगा और तेरी तृषा शांत हो जायेगी।

* आत्मा और रागादि भाव, दोनों के स्वाद में बड़ा अंतर है; परंतु दोनों के स्वाद का पृथक् अनुभव करनेरूप अज्ञानी की भेद-संवेदन शक्ति ढँक गई है और ज्ञानी को शुद्धचेतना द्वारा वह भेद-संवेदन शक्ति खिल गई है; राग से भिन्न आत्मा की प्रतीति होने से चैतन्य का भंडार खुल गया है।
* आत्मा की शक्ति द्वारा जिसने आत्मा को जाना, उसके जन्म-मरण का अंत आ गया और मोक्ष का निधान उसे मिल गया; अपने सुख-शांति का सागर अपने में ही उछलता दिखायी दिया।
* एक-एक शक्ति के भेद द्वारा आत्मा पकड़ में नहीं आता; आत्मस्वभाव के वेदन में सर्व शक्तियों के वेदन का समावेश हो जाता है। यहाँ समझाने के लिये एक-एक शक्ति का भेद करके अलग-अलग वर्णन किया है।
* आत्मा का जीवन चैतन्यमय है, उसमें जड़ता किंचित् नहीं है। इसलिये ज्ञानमय परिणमन ही आत्मा का जीवन है। चेतना आत्मा के सर्व भावों में व्यापक है। ऐसी चेतनायुक्त आत्मा का ग्रहण करने पर उसकी सर्व शक्तियाँ एकसाथ स्वच्छरूप से उल्लसित होती हैं। पर्याय में स्वाद आये बिना, अनुभव हुए बिना यह निर्णय कैसे हो सकता है कि—'द्रव्य-गुण ऐसे हैं ?'—इसलिये द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों में निर्मल शक्ति व्याप्त हो गई है और उन तीनों में राग का अभाव है।—ऐसे आत्मा को ज्ञानी जानता है।
* अनन्त शक्तिवान आत्मा का अनुभव हुआ, वह निर्विकल्प शुद्धप्रमाण है। उस प्रमाण में राग नहीं आता।

* परमभावरूप ज्ञायक आत्मा, उसके सन्मुख होकर अनुभव किया, तब 'मेरा आत्मा ऐसा शुद्ध है'—ऐसा निर्णय हुआ। ऐसे अनुभव बिना मात्र धारणा से 'शुद्ध-शुद्ध' कहे, उसे वास्तव में शुद्ध आत्मा की खबर ही नहीं है।
* निर्विकल्प चैतन्य-रस का अनुभव करने पर सुख का स्वाद आए, तब सुखशक्तिवान आत्मा को माना कहा जाए। (सुख के साथ अनन्त गुणों का भी वेदन होता है।) पर्याय में अतीन्द्रिय आनन्द सहित पूर्ण सुखस्वभाव की प्रतीति होती है।
* पर की ओर के भावों में शान्ति नहीं है। मानों जमकर शीतल हिमखण्ड हो गया हो, ऐसी शान्ति तो आत्मा के वेदन में है।
* मैं स्वयं सर्वज्ञ होनेयोग्य हूँ, मुझमें सर्वज्ञस्वभाव है; इस प्रकार जिसने स्वोन्मुख होकर प्रतीति की, उसके हृदय में सर्वज्ञ विराजमान हुए। सर्वज्ञ की बातें करे और अपने सर्वज्ञस्वभाव की प्रतीति न करे तो उसने सर्वज्ञ को सचमुच जाना ही नहीं है। सर्वज्ञ को यथार्थतया तब जाना कि जब स्वसन्मुख होकर आत्मा के ऐसे सर्वज्ञस्वभाव का स्वीकार किया।
* ऐसे सर्वज्ञस्वभाव का विश्वास करने जाए, वह राग में खड़ा नहीं रहता। राग से भिन्न होकर ज्ञानस्वभाव में आया, तब अरिहन्त के मार्ग में आ गया; वह अल्पकाल में अरिहन्त होगा, ऐसा ही अरिहन्तों ने ज्ञान में देखा है। उसके अनन्त भव नहीं होते, और भगवान भी ऐसा ही देखते हैं।
* धर्मी जीव साधक होकर केवलज्ञान को बुलाता है। जिस स्वभाव की सन्मुखता द्वारा सम्यग्ज्ञानरूपी दूज का उदय हुआ, उसी स्वभाव की सन्मुखता द्वारा केवलज्ञानरूपी पूर्णिमा होना है। जगत में सर्वज्ञ हैं और मैं भी सर्वज्ञता की ओर ही जा रहा हूँ—ऐसी धर्मी को नि:शंकता है।
* अहा, लोकालोक को जानने का सामर्थ्य तो मेरी शक्ति में विद्यमान है।

ऐसे ज्ञाता-स्वभाव को श्रद्धा में लिया, वहाँ धर्मी को परज्ञेय के ओर की आकुलता नहीं रहती। सर्वज्ञता तो मेरे निज-गृह में ही भरी है।

* आत्मा की प्रतीति में उसके सर्वगुणों की प्रतीति आ जाती है। गुणों की प्रतीति के लिए गुणों के भेद नहीं करना पड़ते। गुणों के भेद करने से तो विकल्प होता है। निर्मल शक्ति में विकल्प नहीं है और विकल्प द्वारा निर्मल शक्ति प्रतीति में नहीं आती।
* आत्मा स्वयं अपने को-स्वसंवेदन प्रत्यक्ष होता है; उसके स्वसंवेदन में किसी दूसरे का आलम्बन नहीं है। जिसे राग में लाभबुद्धि है अर्थात् राग में एकत्वबुद्धि है, उसे आत्मा का स्वसंवेदन नहीं होता। स्वसंवेदन राग से अत्यन्त भिन्न है।
* स्वसंवेदन तो अतीन्द्रिय आनन्द है और उसे 'आत्मा' कहा है; स्व-संवेदन में स्वभाव की एकता होने से विकल्प के साथ की एकता टूट जाती है।
* अपने शुद्ध गुण-पर्यायों से जो लक्षित होता है, उतना ही आत्मा है; यह शुद्धप्रमाण का विषय है; इसमें रागादि परभाव नहीं आते।
* प्रकाशस्वभाव के कारण आत्मा स्वयं प्रकाशमान ऐसे स्पष्ट स्व-संवेदनरूप है। अपनी चेतना द्वारा स्वयं अपने को अत्यन्त स्पष्ट प्रकाशित करता है। आत्मा को स्वयं अपने को जानने में किसी राग का या इन्द्रियों का अवलम्बन नहीं है। राग के और इन्द्रियों के अवलम्बन से जो ज्ञात हो, वह आत्मा नहीं, स्वानुभव में स्वयं अपने को प्रत्यक्षरूप करता है, ऐसा प्रकाशस्वभावी आत्मा है।
* भाई! इन्द्रियाँ जड़ हैं, उनके द्वारा तेरा ज्ञान नहीं होता। इन्द्रियों का अवलम्बन लेने जाएगा तो अपने आत्मा को नहीं जान सकेगा। मति-श्रुतज्ञान चतुर्थ गुणस्थान में भी इन्द्रिय-मन का अवलम्बन छोड़कर, आत्मसन्मुख होकर अतीन्द्रिय प्रत्यक्षरूप होकर स्वयं अपना अनुभव

करते हैं। मति-श्रुतज्ञान भी निर्विकल्प होकर सीधे आत्मस्वभाव में प्रवेश कर जाते हैं। ऐसा स्व-संवेदनज्ञान प्रगट हो, तब धर्म हुआ कहा जाता है।

* अरे, अपने ज्ञान से तू स्वयं छिपा रहे—यह कैसे हो सकता है ? आत्मा जिसमें प्रत्यक्षरूप न हो, वह ज्ञान नहीं है। सम्यग्दर्शन तब होता है, जब ज्ञान अन्तर्मुख होकर स्वयं अपने आत्मा को प्रत्यक्ष स्व-संवेदनरूप करता है।
* स्व-संवेदन प्रत्यक्षपने में राग का-व्यवहार का आलम्बन नहीं है, उसमें परमार्थ स्वभाव का ही आलम्बन है, ऐसा प्रत्यक्षपना, वह स्वसत्तावलम्बी है, इसलिए वह निश्चय है; और परोक्षपना रहे, वह परसत्तावलम्बी होने से व्यवहार है।
* आत्मा स्वयं अपने को प्रत्यक्ष अनुभवगम्य होता है, ऐसी निज-गृह की अभी जिसे खबर न हो, उसे धर्म कहाँ से होगा ? और परगृह में भ्रमण कहाँ से रुकेगा ? आत्मा की स्वसंवेदन शक्ति को जो पहिचाने, वह अपने स्वानुभव के लिए किसी भी रागादि परभाव का अवलम्बन नहीं माँगता; और जो परभाव का अवलम्बन मानता है, वह आत्मशक्ति को नहीं जानता।
* वही सच्चा विद्वान है जो अपने ज्ञान को अन्तरोन्मुख करके पूर्णानन्द सर्वज्ञस्वभावी आत्मा को प्रतीतिरूप तथा स्वसंवेदनरूप करता है। आत्मा के स्वसंवेदन से रहित जितना ज्ञातृत्व है, वह सब थोथा है। जगत के जादू में जीव चकित हो जाता है परन्तु अपने चैतन्य का महान चमत्कार है, उनकी उसे खबर नहीं है। अहो, चैतन्य-चमत्कार जगत में सर्वोत्कृष्ट है, जिसका चिन्तन करने से अपूर्व आनन्द होता है।
* चैतन्य के स्वसंवेदन की अद्भुत महानता है, और मिथ्यात्व में अत्यन्त हीनता है; परन्तु जगत को उसकी खबर नहीं है।

* चैतन्य का स्वसंवेदन करने के लिए वीरता से जो जागृत हुआ, वह ऐसी दीनता नहीं करता कि मुझे कुछ इन्द्रियों के आलम्बन की आवश्यकता होगी अथवा मुझे शुभ विकल्प का आधार चाहिए। वह तो चैतन्य की वीरता से कहता है कि—मैं चैतन्य अकेला अपनी स्वसंवेदन शक्ति से अपने आत्मा को प्रत्यक्ष करूँगा, उसमें मुझे अन्य किसी की सहायता नहीं चाहिए। अपने चैतन्य के अतीन्द्रिय भाव से मैं जागृत हुआ, उसमें अन्य का सहारा कैसा ?
* जिस प्रकार युद्ध के मौके पर राजपूत का शौर्य उछल पड़ता है, उसी प्रकार चैतन्य के साधना के मौके पर मुमुक्षु आत्मा की शूरवीरता जाग उठती है और उसकी परिणति स्वभावोन्मुख उल्लसित हो जाती है। अपने स्वभाव के उल्लास के निकट अन्य किसी बाह्यभाव के सामने वह नहीं देखता।
* शुद्धनय के आश्रित हुई जो शुद्धपर्याय, उसे भी शुद्धनय के विषय में सम्मिलित कर दिया है और उसी को आत्मा कहा है। इस प्रकार समयसार की 14 वीं गाथा में शुद्धात्मा की अनुभूति को 'आत्मा' ही कह दिया है, उस अनुभूति में कोई भेदविकल्प नहीं है, अकेले आनन्दस्वरूप आत्मा का सीधा वेदन वर्तता है।
* विकल्प और आत्मा के बीच प्रज्ञा का सीधा प्रहार हो—ऐसा भाव जो समझे, वही भगवान की वाणी को समझा है। अहो, भगवान की वाणी आत्मा और विकल्प के बीच प्रहार करके भेदज्ञान कराती है और अज्ञानरूपी ताले तोड़कर चैतन्य के निधान खोल देती है।
* विकल्प और आत्मा के बीच प्रहार करके उन्हें पृथक् करना है, वह प्रहार विकल्प द्वारा नहीं हो सकता परन्तु ज्ञान द्वारा ही वह प्रहार हो सकता है। उस ज्ञान ने आत्मा को तो अपने ज्ञानस्वरूप में मग्न किया और विकल्प को दूर कर दिया।—इस प्रकार राग से पृथक् होकर, वह

ज्ञान मोक्ष की ओर परिणमित हुआ, आनन्दस्वभाव में एकाग्र हुआ।

* अहो, इस तत्त्व को अनुभव में लेकर प्राप्त करें, ऐसे जीव तो लाखों-करोड़ों में कोई विरले ही होते हैं। ऐसे तत्त्व का प्रेम करके उसकी प्राप्ति की अभिलाषा करनेवाले अनेक जीव होते हैं, परन्तु अनुभव करनेवाले तो विरले ही होते हैं। ऐसी विरलता जानकर अन्तर के अपूर्व उद्यमपूर्वक स्वयं उन विरलों में सम्मिलित हो जाना चाहिए।

[आत्मधर्म हिन्दी, अंक-2, वर्ष-जून, 1971]

सुख दुख करता आन हैं, यौं कुबुद्धि श्रद्धान।
करता तेरे कृत-करम, मैटै क्यौं न अग्यान॥248॥
सुख दुख विद्या आयु धन, कुल बल बित अधिकार।
साथ गर्भ में अवतरैं, देह धरी जिहि बार॥249॥
बन रन रिपु जल अगनि गिरि, रुज निद्रा मद मान।
इनमें पुन रच्छा करै, नाहीं रच्छक आन॥250॥

अर्थ : हमारे सुख-दु:ख का कर्ता कोई अन्य है - ऐसा जानना-मानना, कुबुद्धि-कुश्रद्धान है। अपने किए गए कर्म ही इनके कर्ता हैं - ऐसा मानकर अपने अज्ञान को नष्ट क्यों नहीं करते हो ?

जिस समय यह जीव गर्भ में अवतरित हो देह-धारण करता है; उसी समय सुख, दु:ख, विद्या, आयु धन, कुल, बल, वित्त, अधिकार आदि अपने साथ लेकर आता है।

वन, रण, शत्रु, जल, अग्नि, पर्वत, रोग, निद्रा, मद, मान इत्यादि प्रसंगों में अपना पुण्य ही अपनी रक्षा करता है; विश्व में अन्य कोई भी किसी का रक्षक नहीं है।

भाव यह है कि 'जैसी करनी, वैसी भरनी'; अर्थात् यहाँ प्रत्येक प्राणी अपनी-अपनी करनी का ही फल भोगता है। कोई अन्य किसी अन्य का किसी भी रूप में कर्ता, धर्ता, हर्ता नहीं है॥२४८-२५०॥ *(बुधजन-सतसई)*

आचार्यदेव परिचय शृंखला

भगवान आचार्यदेव

भगवान श्री धरसेनाचार्य

महावीर भगवान की वाणी के प्रथम श्रुतस्कन्ध के संस्थापक भगवान धरसेनाचार्य हैं। धवला के आधार से सौराष्ट्र देश के गिरिनगर नाम के नगर (हाल का नाम गिरनार) की चन्द्रगुफा में रहनेवाले अष्टांग महानिमित्त के पारगामी, प्रवचनवत्सल और अंगश्रुत के विच्छेद की आशंका से चिन्तित धरसेनाचार्य ने किसी धर्मोत्सव आदि के निमित्त से महिमानाम की नगरी में सम्मिलित हुए दक्षिणपथ के आचार्यों के पास एक समाचार भेजा, जिसमें उन्होंने यह इच्छा व्यक्त की, कि योग्य शिष्य उनके पास आकर षट्खण्डागम का अध्ययन करे।

दक्षिण देश के आचार्य प्रमुख अर्हदबलि ने शास्त्र के अर्थग्रहण और धारण में समर्थ देश, कुल, शील और जाति से उत्तम, समस्त कलाओं में पारंगत दो मुनियों को वेणा नदी के तट से आचार्यवर धरसेनजी के पास भेजा। रात्रि को आचार्यवर धरसेनजी को एक स्वप्न आया, जिसमें दो सुन्दर

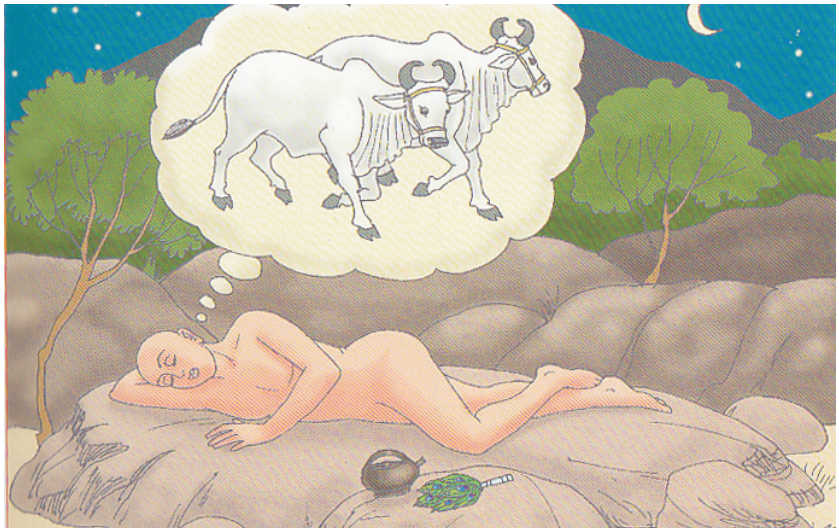

पुष्ट वृषभ दिखाई दिए। जिससे धरसेन आचार्य समर्थ मुनियों का आगम जान अति हर्षित हुए व मुख से वचन निकल पड़े, कि श्रुतदेवता जयवन्त हो। उन दोनों ने वहाँ पहुँचकर आचार्य धरसेन की तीन प्रदक्षिणा दी और उनके चरणों में बैठकर सविनय नमस्कार किया। आचार्य धरसेन ने उन दोनों योग्य शिष्यों की[1] परीक्षा[2] ली और परीक्षा में उत्तीर्ण होने के पश्चात् उन्हें सिद्धान्त की शिक्षा दी। ये दोनों मुनि पुष्पदन्त और भूतबलि नाम के आचार्यथ ेय हि शक्षाअ ाषाढ़श ुक्लाए कादशीक ेज योंह ीप ूर्णह ुई, वर्षाकाल के समीप आ जाने से, उसी दिन अपने पास से आचार्यदेव धरसेन ने, उन्हें विदा कर दिया। दोनों शिष्यों ने गुरु की आज्ञा अनुल्लंघनीय मानकर उनका पालन किया और वहाँ से चलकर अंकलेश्वर में चातुर्मास किया।

इन्द्रनन्दिकृत श्रुतावतार और विबुध श्रीधरकृत श्रुतावतार के आधार से ज्ञात होता है, कि धरसेनाचार्य को उनकी मृत्यु निकट है, ऐसा ज्ञात था।

---

1. पुष्पदन्त मुनि का मूल नाम सुबुद्धि मुनि व भूतबलि का नाम नरवाहन मुनि था। परन्तु भगवान धरसेनाचार्यदेव से शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात्, देवों द्वारा सुबुद्धि मुनि की दन्तपंक्ति ठीक करने से व नरवाहन मुनि की भूत जाति के देवों ने पूजा की होने से, क्रमश: उनका नाम आचार्य पुष्पदन्त व भूतबलि पड़ा।
2. पुष्पदन्त और भूतबलि की बुद्धि-परीक्षा के हेतु धरसेनाचार्य ने दो मन्त्र षष्ठोपवास सह साधने हेतु दिए थे। उनमें एक मन्त्र अधिक अक्षरवाला था और दूसरा हीनाक्षर था। गुरु ने उन मन्त्रों को सिद्ध करने का आदेश दिया। शिष्य मन्त्रसाधना में संलग्न हो गए। जब मन्त्र के प्रभाव से उनकी अधिष्ठात्री देवियाँ उपस्थित हुई तो एक देवी के दाँत बाहर निकले हुए थे और दूसरी कानी थी। देवता विकलांग नहीं होते; इस प्रकार निश्चय कर, उन दोनों ने मन्त्रसम्बन्धी व्याकरणशास्त्र के आधार पर मन्त्रों को शोधन किया और मन्त्रों को शुद्धकर पुन: साधना में संलग्न हुए। वे देवियाँ पुन: सुन्दर और सौम्यरूप में प्रस्तुत हुईं, सिद्धि के अनन्तर वे दोनों शिष्य गुरु के समक्ष उपस्थित हुए और विनयपूर्वक विद्यासिद्धि सम्बन्धित समस्त वृत्तान्त निवेदित कर दिया। गुरु धरसेनाचार्य शिष्यों के ज्ञान से प्रभावित हुए और उन्होंने शुभ तिथि, शुभ नक्षत्र और शुभवार में सिद्धान्त का अध्यापन प्रारम्भ किया।

आगन्तुक मुनिवरों को उस कारण क्लेश न हो, इसलिए उन मुनियों को तत्काल अपने पास से विदा कर दिया।

आचार्य धरसेन सफल शिक्षक और आचार्य थे। आचार्य वीरसेनजी ने आचार्य धरसेनजी की विद्वत्ता और पाण्डित्य का वर्णन करते हुए बताया है, कि आप परवादिरूपी हाथी के समूह के मद का नाश करनेवाले श्रेष्ठ सिंह के समान व सिद्धान्तरूपी श्रुत का पूर्णतया मन्थन करनेवाले थे। इतना ही नहीं आप (1) सभी अंग और पूर्वों के एकदेश ज्ञाता थे। (2) अष्टांग-महानिमित्त के पारगामी थ। (3) लेखनकला में प्रवीण थे। (4) मन्त्र-तन्त्र आदि शास्त्रों के वेत्ता थे। (5) महाकम्मपयडिपाहुड के वेत्ता थे। (6) प्रवचन और शिक्षण देने की कला में पटु थे। (7) प्रवचनवत्सल थे। (8) प्रश्नोत्तरशैली में शंका-समाधानपूर्वक शिक्षा देने में कुशल थे। (9) गहनीय विषय को संक्षेप में प्रस्तुत करना भी उन्हें आता था। (10) आग्रायणीयपूर्व के पंचम वस्तु के चतुर्थ प्राभृत के व्याख्यानकर्ता थे। (11) पठन, चिंतन एवं शिष्य-उद्‌बोधन की कला में पारंगत थे। (12) आप एकान्तप्रिय व ज्ञान-ध्यान में मग्न रहनेवाले थे। (13) आप समाधिमरण प्रिय थे।

धवलाटीका से आचार्य धरसेन के गुरु के नाम का पता नहीं चलता। आचार्य इन्द्रनन्दि के श्रुतावतार में आचार्य लोहार्य तक की गुरुपरम्परा के पश्चात् विनयदत्त, श्रीदत्त, शिवदत्त और अर्हद्दत्त इन चार आचार्यों का उल्लेख आया है। ये सभी आचार्य अंगों और पूर्वों के एकदेशज्ञाता थे। तदन्तर अर्हद्‌बलि का उल्लेख आता है। ये बड़े भारी संघनायक थे और इन्होंने संघों की स्थापना की थी। आचार्य अर्हद्‌बलि के पश्चात् श्रुतावतार में आचार्य माघनन्दि का नाम आया है। इन आचार्य माघनन्दि के पश्चात् आचार्य धरसेन के नाम का उल्लेख आया है। इस प्रकार श्रुतावतार में आचार्य अर्हद्‌बलि, आचार्य माघनन्दि, आचार्य धरसेन इन तीनों आचार्यों

का उल्लेख मिलता है। इन तीनों में गुरु शिष्य का सम्बन्ध था या नहीं इसका निर्देश नहीं आया है।

नन्दिसंघ की प्राकृतपट्टावली से यह अवगत होता है कि आचार्य अर्हद्बलि, आचार्य माघनन्दि, आचार्य धरसेन, आचार्य पुष्पदन्त और आचार्य भूतबलि एक-दूसरे के उत्तराधिकारी थे। अतएव आचार्य धरसेन के दादागुरु आचार्य अर्हद्बलि और गुरु आचार्य माघनन्दि कहें तो कोई अतिशयोक्ति नहीं है। गुर्वावली में आचार्य धरसेन का निर्देश नहीं है। अत: इस गुर्वावलि के आधार पर यह निश्चितरूप से नहीं कहा जा सकता है, कि आचार्य धरसेन के गुरु आचार्य माघनन्दि ही थे। सत्य है, कि आचार्य धरसेन विद्यानुरागी थे और शास्त्राभ्यास में संलग्न रहने के कारण संघ का नायकत्व आचार्य माघनन्दि के अन्य शिष्य आचार्य जिनचन्द्र पर पड़ा हो। आचार्य धरसेन ने पुष्पदन्त और भूतबलि को सिद्धान्त-आगम का अध्ययन कराकर अपनी एक नयी परम्परा स्थापित की हो।

आपकी षट्खण्डागम व योनिप्राभृत नामक दो रचनाएँ कही जा सकती हैं।

आचार्यदेव धरसेन का काल करीब ई.स. 38 से 106 के आसपास का निर्णित होता है, ऐसा इतिहासकारों का मत है।

षट्खण्डागम उपदेशक आचार्यदेव धरसेन भगवन्त को कोटि-कोटि वन्दन।

तीर्थधाम मङ्गलायतन में

ब्रह्मचारी रवीन्द्रजी 'आत्मन' का उद्बोधन

तीर्थधाम मङ्गलायतन : 18 जनवरी 2018 बालब्रह्मचारी रवीन्द्रजी आत्मन श्री पवनजी को उद्बोधन देने हेतु पधारे। इस अवसर पर उन्होंने मङ्गलार्थियों को भी दो बार स्वाध्याय कराया। आपके वैराग्यवर्धक उद्बोधन एवं तत्त्वज्ञान की वर्षा से मङ्गलायतन परिवार अभिभूत हुआ।

उपदेश सिद्धान्त रत्नमाला

आगे समस्त पापों में से मिथ्यात्व में अधिक पाप दिखाते हैं :-

मिथ्यात्व का दुष्कर फल

आरंभ जम्मि पावे, जीवा पावंति तिक्ख दुक्खाइं।
जं पुण मिच्छत्त लवं, तेण वि ण लहंति जिणबोहिं ॥10॥

अर्थ : व्यापारादि आरम्भ से उत्पन्न हुआ जो पाप है, उसके प्रभाव से जीव नरकादि के तीक्ष्ण दु:खों को प्राप्त करता है परन्तु यदि मिथ्यात्व का एक अंश भी विद्यमान हो तो जीव सम्यक् दर्शन-ज्ञान-चारित्र एवं तपमयी बोधि को प्राप्त नहीं कर पाता है।

भावार्थ : कोई जीव व्यापारादि को छोड़कर जिनाज्ञा से विरुद्ध आचरण करता हुआ भी अपने को गुरु मानता है, उसको कहते हैं कि व्यापारादि के आरम्भ से जो पाप होता है, उससे जीव नरकादि का दु:ख तो पाता है, पर उसे कदाचित् मोक्षमार्ग की प्राप्ति हो जाती है, परन्तु जिनवाणी के अश्रद्धानरूप मिथ्यात्व के एक अंश के भी विद्यमान रहते हुए मोक्षमार्ग अतिशय दुर्लभ होता है। इस कारण से मिथ्यात्व सब पापों में बड़ा पाप है ॥10॥

उत्सूत्रभाषण से जिनाज्ञा का भंग

जिणवर आणा भंगं, उमग्ग-उस्सुत्त लेस देसणयं।
आणा भंगे पावं, ता जिणमयं दुक्करं धम्मं ॥11॥

अर्थ - जिन आज्ञा का उल्लंघन करके उन्मार्ग-उत्सूत्र का जो अंश मात्र भी उपदेश देना है, वह जिनेन्द्र भगवान की आज्ञा का भंग करना है और मार्ग का उल्लंघन करके प्रवर्तना है तथा जिन आज्ञा भंग करने में इतना अधिक पाप है कि उसे फिर जिनभाषित धर्म को पाना अत्यन्त दुर्लभ हो जाता है।

भावार्थ - कषाय के वशीभूत होकर यदि कोई जिनवर की आज्ञा के अतिरिक्त एक अक्षर भी कहे तो उसमें इतना अधिक पाप होता है कि

जिससे वह जीव निगोद चला जाता है। निगोद में जाने के पश्चात् जिनधर्म को प्राप्त करना अतिशय कठिन हो जाता है। इसलिए अपनी पद्धति बढ़ाने के लिए अथवा मानादि कषायों का पोषण करने के लिए जिनवाणी के सिवाय रंचमात्र भी उपदेश देना योग्य नहीं है ॥11॥

मन्दिरजी का द्रव्य बरतनेवाला महापापी है

जिणवर आणा रहिअं, वट्टारंता वि केवि जिणदव्वं।
वुड्डंति भव-समुद्दे, मूढा मोहेण अण्णाणी ॥12॥

अर्थ – कई पुरुष जिनाज्ञा रहित जिनद्रव्य अर्थात् मन्दिरजी के द्रव्य को अपने प्रयोग में लेते हैं, वे अज्ञानी मोह से संसार-समुद्र में डूबते हैं।

भावार्थ – कई जीव मन्दिरजी के द्रव्य से व्यापार करते हैं और कई उधर लेकर आजीविका करते हैं, वे जिनाज्ञा से पराङ्मुख हैं एवं अज्ञानी हैं। वे जीव महापाप बाँधकर संसार में डूबते हैं[1] ॥12॥

दुराग्रही उपदेश का पात्र नहीं

कुग्गहगह-गहियाणं, मुद्धो जो देई धम्म उवएसो।
सो चम्मासी कुक्कुर, वयणम्मि खवेइ कप्पूरं ॥13॥

अर्थ – खोटे आग्रह रूपी ग्राह[2] से ग्रहे हुए जीवों को जो मूर्ख धर्मोपदेश देता है, वह चमड़ा खानेवाले कुत्ते के मुख में कपूर को रखने जैसी चेष्टा करता है।

---

1. टि० – सागर प्रति में इस गाथा का अर्थ व भावार्थ निम्न प्रकार दिया है :-

अर्थ – जिनवर की आज्ञा से रहित होकर कोई मूढ़ पुरुष जिनद्रव्य अर्थात् जिनमार्ग के द्रव्यलिंग रूप दिगम्बर वेष को धारण करता हुआ मिथ्यात्व से अज्ञानी रहता हुआ भव समुद्र में ही डूबता है।

भावार्थ – जिनवर की आज्ञानुसार सम्यग्दर्शनादि धारण किए बिना जिनमार्ग के द्रव्यलिंग को धारण कर लेने मात्र से जीव का कल्याण नहीं होता। मोह से अज्ञानी मूढ़ जीव द्रव्यलिंग को धारण कर लेने पर भी संसार में ही भटकता है इसलिए प्रथम सम्यक्त्व को ग्रहण करने का उपदेश है। जिनमार्ग में पहिले सम्यक्त्व होता है, पश्चात् मुनिव्रत होता है – ऐसा क्रम है ॥12॥

2. अर्थ – मगर अथवा पिशाच।

भावार्थ – जिनके तीव्र मिथ्यात्व का उदय है, उन्हें जिनवाणी रुचती नहीं है, इसी प्रकार यह भी जान लेना चाहिए कि जिन्हें जिनवाणी रुचती नहीं है, उनके तीव्र मिथ्यात्व का उदय चल रहा है, वृथा उपदेश क्यों देता है ! ॥13 ॥

जिनसूत्रभाषी व उत्सूत्रभाषी का विवेचन

रोसो वि खमाकोसो, सुत्तं भासंत जस्स धण्णस्स।
उस्सुत्तेण खमा वि य, दोस महामोह आवासो ॥14 ॥

अर्थ – जिनसूत्र के अनुसार उपदेश देनेवाले उत्तम वक्ता का रोष भी करे तो वह क्षमा का भण्डार है और जो पुरुष जिनसूत्र के विरुद्ध उपदेश देता है, उसकी क्षमा भी रागादि दोष तथा मिथ्यात्व का ठिकाना है ।

भावार्थ – कोई सद्वक्ता यथार्थ उपदेश देता है और कारण के वश से वह क्रोध करके भी कहे तो उसका क्रोध भी क्षमा ही है क्योंकि उसका प्रयोजन जीवों को धर्म में लगाने का है और जो पुरुष अपनी पूजा व आजीविका आदि के लिए यथार्थ उपदेश नहीं देता वह अपना तथा दूसरों का अकल्याण करनेवाला होने से उसकी क्षमा भी आशय के वश में दोषरूप ही है ॥14 ॥

जिनधर्म को कष्ट सहकर भी जान

इक्को वि ण संदेहो, जं जिणधम्मेण अत्थि मोक्खसुहं।
तं पुण दुव्विण्णेयं, अइ उक्किट्ठ पुण्णरसियाणं ॥15 ॥

अर्थ – 'जिनधर्म के सेवन से मोक्षसुख प्राप्त होता है' – इसमें किसी भी प्रकार का सन्देह नहीं है। इसलिए जो पुरुष धर्म के अति उत्कृष्ट रस के रसिक हैं, उन्हें यह जिनधर्म कष्ट करके भी जानना योग्य है ।

भावार्थ – जीव का हितकारी एक जिनधर्म ही है। इसलिए अत्यन्त कष्ट करके भी इस जिनधर्म का स्वरूप जानना योग्य है। इसके सिवाय अन्य लौकिक वार्ताओं को सीखने में किसी भी प्रकार से आत्महित नहीं है, वे तो कर्म के अनुसार सभी के बन ही रही हैं ॥15 ॥

पुरुषार्थमूर्ति श्री निहालभाई सोगानी के अद्भुत-पत्र

अजमेर, 22-3-1949

आत्मार्थी... प्रत्ये निहालचन्द्र का धर्मस्नेह।

कार्ड आपका मिला, प्रतिष्ठा व विहार आदि के समाचार ज्ञात हुए।

जब से आपका कार्ड आया है तब से रोज कुछ जवाब लिखना है, ऐसा विकल्प होता है, परन्तु लेखनी नहीं बढ़ती, कारण क्या लिखूँ ऐसा कोई सहज विषय स्मरण नहीं होता...

'मैं त्रिकाली सहज ज्ञानस्वभावी ध्रुव पदार्थ हूँ व प्रतिक्षण ज्ञानरूप परिणमन मेरा सहज स्वभाव है; जड़ आश्रित परिणाम जड़ के हैं' - पूज्य गुरुदेव के इस सिद्धान्त की घूँटी ने क्षणिक परिणाम की ओर के वलण (झुकाव) के रस को फीका कर दिया है व सहज स्व के सिवाय कोई कार्य में रस नहीं आता है, अत: जवाब आदि नहीं पहुँचने में व विलम्ब आदि होने में मेरी ओर का ख्याल न करना।

उत्कृष्ट शुभ-दृष्टि की अपेक्षा आपको महाराजश्री के व्याख्यानों की अनुकूलता है, परन्तु यहाँ तो अशुभ प्रतिकूलताएँ बहुत हैं। फिर भी 'मुझे विश्व में कोई भी पदार्थ अनुकूल है न प्रतिकूल है' - इस सिद्धान्त को लेकर मैं प्रतिकूलताओं को भी अनुकूल ही समझता हूँ। कारण ऐसी अवस्था में परिणाम केवल स्वसामर्थ्य का ही आश्रय लेते रहें, यही एक प्रयोजन रहता है व पर-तरफ अधिक नहीं अटक पाते।....

आत्म-स्वास्थ्य में उत्तरोत्तर वृद्धि होती रहे, यही अभिलाषा है; जो कि (यद्यपि) आत्मा तो अभी-ही पूर्ण स्वस्थ्य और अभिलाषारहित है, परन्तु अपूर्ण परिणमन की अपेक्षा ऐसा लिखा है।

आपका

निहालचन्द्र

अजमेर, 29-9-1949

आत्मार्थी... प्रत्येक निहालचन्द्र का धर्मस्नेह।

अभी-अभी आपका कार्ड मिला।.... मैं परिस्थितिवश दीवाली के पहले वहाँ (सोनगढ़) नहीं आ सकता। दीवाली के दूसरे या तीसरे दिवस वहाँ आऊँगा।...

वहाँ 'सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार' पर व्याख्यान होता है; मैंने पहले भी ऐसे समय पर वहाँ उपस्थित होना सोचा था; परन्तु अभी भी नहीं आ सकता, यह पुण्य की कमी है। साथ ही गुरुदेवश्री के गुरुमन्त्र का उपयोग करते रहने से अर्थात् अखण्ड ज्ञानस्वभाव का आश्रय लेते रहने से, जैसे-जैसे पुण्य-विकल्प सहज ही टूटते जाते हैं, वैसे-वैसे आत्मा में सर्व विशुद्धि सहज ही विकसित होती जाती है, अत: परम सन्तोष भी है।

कलकत्ता व हिसार आदि से पण्डितगण व मुमुक्षुजन वहाँ आ रहे हैं, यह उनके पुण्य का उदय समझो; और यदि उन्होंने वहाँ यथार्थ दृष्टि कर ली, तो उनके परम पुण्य का उदय समझो। निमित्त-नैमित्तिक ज्ञान का सम्बन्ध बताता है कि, जहाँ तीर्थंकर की तैयारी होती है, वहाँ गणधर से लेकर केवलियों तक की भी कमी नहीं रहती। समुदाय का समुदाय की केवलज्ञान की तैयारी के सन्मुख बढ़ता ही जाएगा, ऐसी दृढ़ प्रतीति होती जाती है।

अजमेर का वातावरण अभी शुभोपयोगी मिथ्यादृष्टियों से भरा हुआ है। कभी-कभी गुरुदेव की ठोस, नि:शंक, नि:स्वार्थ व स्वआश्रित वाणी का असर फैलता है; फिर पूर्व आग्रहों के कारण दब जाता है; अन्त में पात्र होंगे, वे ठिकाने आ जाएँगे।

प्रतिमाजी पर से कीकी (आँख) का चिह्न निकाल लिया गया, यह बहुत ही अच्छा हुआ, ऊपरी-बाह्य दृष्टिवालों के यह एक बाधक कारण होता था।

पूज्य गुरुदेव को अत्यन्त भक्तिपूर्वक प्रणाम व और मुमुक्षु भाईयों को यथायोग्य।

आपका

निहालचन्द्र

सुगुरु

(1) अन्तरंगा मथ्यात्वादिअ ौरब हिरंगव स्त्रादिप रिग्रहर हितप्रशंसा योग्य गुरु उत्तम कृतकृत्य पुरुषों के हृदय में निरन्तर रहते हैं।

(2) अज्ञानी जीवों को हँस-हँसकर संसार भ्रमण के कारणभूत कर्मों को बाँधते हुए देखकर श्री गुरुओं के हृदय में करुणाभाव उत्पन्न होता है कि 'ये जीव ऐसा काय क्यों करते हैं, वीतराग क्यों नहीं होते।'

(3) शुद्ध गुरु के उपदेश से सम्यक् श्रद्धान होता है और अश्रद्धानी के मुख से शास्त्र सुनने पर श्रद्धान निश्चल नहीं होता – ऐसा तात्पर्य है।

(4) जीव के बाह्य-अभ्यन्तर परिग्रह से रहित निर्ग्रन्थ गुरुओं के निकट और उनका संयोग न हो तो उन ही के उपदेश को कहनेवाले श्रद्धानी श्रावक से शास्त्र सुनना योग्य है।

(5) मन्दमोही भव्य जीवों की ही बाह्य-अभ्यन्तर परिग्रह से रहित वीतरागी सुगुरुओं के प्रति तीव्र प्रीति होती है।

(6) बाह्य-अभ्यन्तर परिग्रह से रहित शुद्ध गुरुओं का सेवक जो पुरुष है, वह मिथ्यादृष्टियों का महा शत्रु है इसलिए उसे उन मिथ्यादृष्टियों के निकट बलरहित होकर न बसते हुए जिनधर्मियों की ही संगति में रहना योग्य है – यह उपदेश है।

(7) धर्म के स्वरूप के वक्ता सुगुरु का स्वाधीन संयोग होने पर भी जो निर्मल धर्म का स्वरूप नहीं सुनते वे पुरुष ढीठ हैं और दुष्ट हैं अथवा संसार के भय से रहित सुभट हैं।

*(साभार : **उपदेश सिद्धान्त रत्नमाला**)*

वैराग्य समाचार

हैदराबाद : श्री ज्ञानचन्द जैन का देहपरिवर्तन शान्तभावपूर्वक हो गया। आप श्री विजय लुहाड़िया, सासनी-अहमदाबाद के भाई के थे। तीर्थधाम मङ्गलायतन परिवार आपके शीघ्र निर्वाण की भावना भाता है।

समाचार-दर्शन

तीर्थधाम मङ्गलायतन में पंच परमेष्ठी विधान

तीर्थधाम मङ्गलायतन : 07 जनवरी दिन रविवार, तीर्थधाम मङ्गलायतन में श्री प्यारेलाल संजयकुमार जैन परिवार के द्वारा पंच परमेष्ठी विधान का आयोजन किया गया। जिसमें प्रात:काल पूज्य गुरुदेवश्री के सी.डी. प्रवचन के पश्चात् संगीतमयी पंच परमेष्ठी विधान बाहुबली जिनमन्दिर में सम्पन्न हुआ। इस विधान में सम्पूर्ण अर्थ का भी खुलासा किया गया।

विधान के अन्तर्गत मङ्गलार्थियों के अलावा अलीगढ़-हाथरस एवं सासनी के साधर्मियों ने भी भाग लिया।

मङ्गलायतन विश्वविद्यालय में

'नियतिवाद' विषय पर, अन्तर्राष्ट्रीय सेमिनार सम्पन्न

मङ्गलायतन विश्वविद्यालय : 11-12 जनवरी 2018 को मङ्गलायतन विश्वविद्यालय में, इन्टरनेशनल स्कूल एवं मङ्गलायतन विश्वविद्यालय के दर्शन विभाग के द्वारा एक अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की सेमिनार का आयोजन किया गया। जिसका विषय नियतिवाद था। इस विशाल सेमिनार में डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल, जयपुर; ब्रह्मचारी हेमन्तभाई गाँधी, सोनगढ़; ब्रह्मचारी हेमचन्द जैन 'हेम', देवलाली; पण्डित सुमतप्रकाश जैन, खनियांधाना; डॉ. योगेश जैन, अलीगंज; डॉ. राकेश जैन, नागपुर; पण्डित संजय शास्त्री, तीर्थधाम मङ्गलायतन; पण्डित संयम शास्त्री, जयपुर; डॉ. सुगन सी. जैन, दिल्ली; डॉ. पी. एस. श्रीवास्तव; प्रोफेसर जयन्तीलाल जैन, मद्रास; प्रोफेसर एम. के. भण्डारी; डॉ. अशोक के. सिंह; डॉ. मीनल केटरनिकर; डॉ. कामिनी गोगरी; डॉ. साकेत जैन, सिंगापुर; डॉ. वर्षा शाह; श्री नयन जैन, सिंगापुर; डॉ. संदीप शांडिल्य; श्री हिमांशु जैन, यूएसए; प्रोफेसर पी. सी. कंठालिया; प्रोफेसर एस. एन. गोडावत; श्री छाया सेठ; श्री आत्मार्पित देवांग; श्री जिनेश आर. सेठ, मुम्बई; श्रीमती संगीता शाह; डॉ. सुरेन्द्र सिंह पोखरन; प्रोफेसर क्रिस्टोफर के. चैपल, यूएसए; डॉ. अनुपम जश; डॉ. नवीनकुमार श्रीवास्तव; प्रोफेसर अशोककुमार सिंह; डॉ. राहुलकुमार सिंह; डॉ. वेदव्यास पाण्डे आदि विभिन्न देश के विद्वानों ने छह सेशन में नियतिवाद पर अपने विचार व्यक्त किए।

कार्यक्रम का प्रारम्भ विश्वविद्यालय के सुन्दर ऑडिटोरियम में मंगलाचरण द्वारा

प्रारम्भ हुआ। संगीत विभाग के छात्र-छात्राओं द्वारा णमोकारमन्त्र के उच्चारणपूर्वक, भैया भगवतीदासजी के सुन्दर गीत 'जो जो देखी वीतराग ने...' आदि को प्रस्तुत किया गया। इसके पश्चात् कुल गीत के द्वारा विश्वविद्यालय का गौरवगान किया गया। कार्यक्रम का संयोजन डॉ. जयन्तीलाल जैन, मद्रास एवं डॉ. सगुनचन्द्र जैन, दिल्ली ने किया।

सभी विद्वानों का स्वागत डॉ. एस. एन. पाण्डे, प्रो. वीसी; प्रोफेसर एस. सी. जैन, भूतपूर्व वीसी एवं वर्तमान वीसी ने किया। डॉ. ए.के. राजपूत ने सभी को धन्यवाद ज्ञापित किया।

इस सेमिनार की सफलता को देखकर भविष्य में भी ऐसी सेमिनारें आयोजित की जाएँ, इस प्रकार का भाव सभी विद्वानों ने व्यक्त किया। सभी विद्वानों को मङ्गलायतन विश्वविद्यालय का सुन्दर स्मृति चिह्न भी प्रदान किया गया। अन्त में 'मैं ज्ञानानन्द स्वभावी हूँ' आदि भजन द्वारा कार्यक्रम का समापन किया गया।

द्रोणगिरि सिद्धक्षेत्र पर श्री नियमसार मण्डल विधान एवं गुरुवाणी मन्थन शिविर सम्पन्न

द्रोणगिरि : 27 दिसम्बर 2017 से 01 जनवरी 2018 तक स्वर्गीय श्री कृष्णचन्द्र जैन की स्मृति में श्री आदित्यकुमारजी अखिलेश शास्त्री लाल दुकान परिवार, सागर के द्वारा श्री नियमसार मण्डल विधान एवं गुरुवाणी मन्थन शिविर सानन्द सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर पण्डित अभयकुमार शास्त्री, देवलाली, ब्रह्मचारी सुमतप्रकाश जैन, खनियांधाना, डॉ. राकेश शास्त्री नागपुर पण्डित विपिन शास्त्री मुम्बई, डॉ. स्वर्णलता जैन नागपुर, पण्डित राजकुमार जैन, उदयपुर, पण्डित विराग शास्त्री जबलपुर, पण्डित सिद्धार्थ दोशी रतलाम, पण्डित संजय शास्त्री, रावतभाटा आदि अनेक विद्वानों का समागम प्राप्त हुआ। पण्डित शुभम शास्त्री सिद्धायतन एवं पण्डित अरविन्द शास्त्री, पण्डित अविरल शास्त्री, पण्डित अनुराग शास्त्री के संयोजकत्व में सभी कार्यक्रम सम्पन्न हुए। प्रात:काल छह बजे से रात्रि नौ बजे तक पूज्य गुरुदेवश्री के सी.डी. प्रवचनोंके स ाथ-साथ नियमसारम ण्डल विधानए वं विद्वानोंके व याख्यानोंक ा मुख्यरूप से लाभ प्राप्त हुआ। इस शिविर के मध्य ही सिद्धायतन में आयोजित होनेवाले 52 वें श्री वीतराग विज्ञान शिक्षण प्रशिक्षण शिविर की समिति का गठन सम्पन्न हुआ। साथ ही सागर सम्भाग के स्नातक शास्त्री परिषद के सदस्यों की उपस्थिति में प्रशिक्षण सम्बन्धी बैठक सम्पन्न हुई।

तीर्थधाम मङ्गलायतन में

पण्डित संजय शास्त्री परिवार द्वारा आयोजित विधान की झलकियाँ

Regn. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2015-17

अगनि चोर भूपति बिपति, डरत रहै धनवान।
निर्धन नींद निसंक ले, माने न काकी हान॥

अर्थात्, अग्नि, चोर, राजा, विपत्ति आदि से धनवान सदा डरता रहता है; परन्तु किसी से भी अपनी हानि नहीं माननेवाले निर्धन नि:शंक हो नींद लेते हैं/ किसी से डरते नहीं हैं।

भाव यह है कि धन सदैव आकुलता-उत्पादक ही है; अत: उसके पीछे नहीं पड़ना चाहिए?

एक चरन हू नित पढ़े, तौ काटै अग्यान।
पनिहारी की लेज सैं, सहज कटै पाखान॥

अर्थात्, जैसे - पनिहारी की रस्सी की नित्य रगड़ से पाषाण सहजता से कट जाता है; उसी प्रकार यदि कोई व्यक्ति एक चरण भी प्रतिदिन पढ़ता है तो उसका अज्ञान समाप्त हो जाता है।

भाव यह है कि किसी भी कार्य की निरन्तरता, उसे सफल बना देती है।

(बुधजन-सतसई, दोहा - 107-108)

पं. सं. : DELBIL/2001/4685
स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक पवन जैन द्वारा **मङ्गलायतन** मुद्रणालय, आगरा रोड, अलीगढ़-202001 छपवाकर, 'विमलांचल', हरिनगर, अलीगढ़-202001 से प्रकाशित। सम्पादक : पण्डित संजय जैन शास्त्री, मङ्गलायतन।

मङ्गलायतन
श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, हरिनगर, आगरारोड, अलीगढ़-202001 (उ.प्र.)
Shri Adinath-Kundkund-Kahan Digamber Jain Trust
Harinagar, Agra Road, Aligarh-202001 (U.P.)
Ph. : 9997996346, 2410010/10; Fax : 2410019/22
info@mangalayatan.com www.mangalayatan.com